ओ३म्

सुधारक

गुरुकुल झज्जर का लोकप्रिय मासिक पत्र

वर्ष ६३ | अंक ९ | मई २०१६ | वैशाख २०७३ | वार्षिक मूल्य १५० रु०

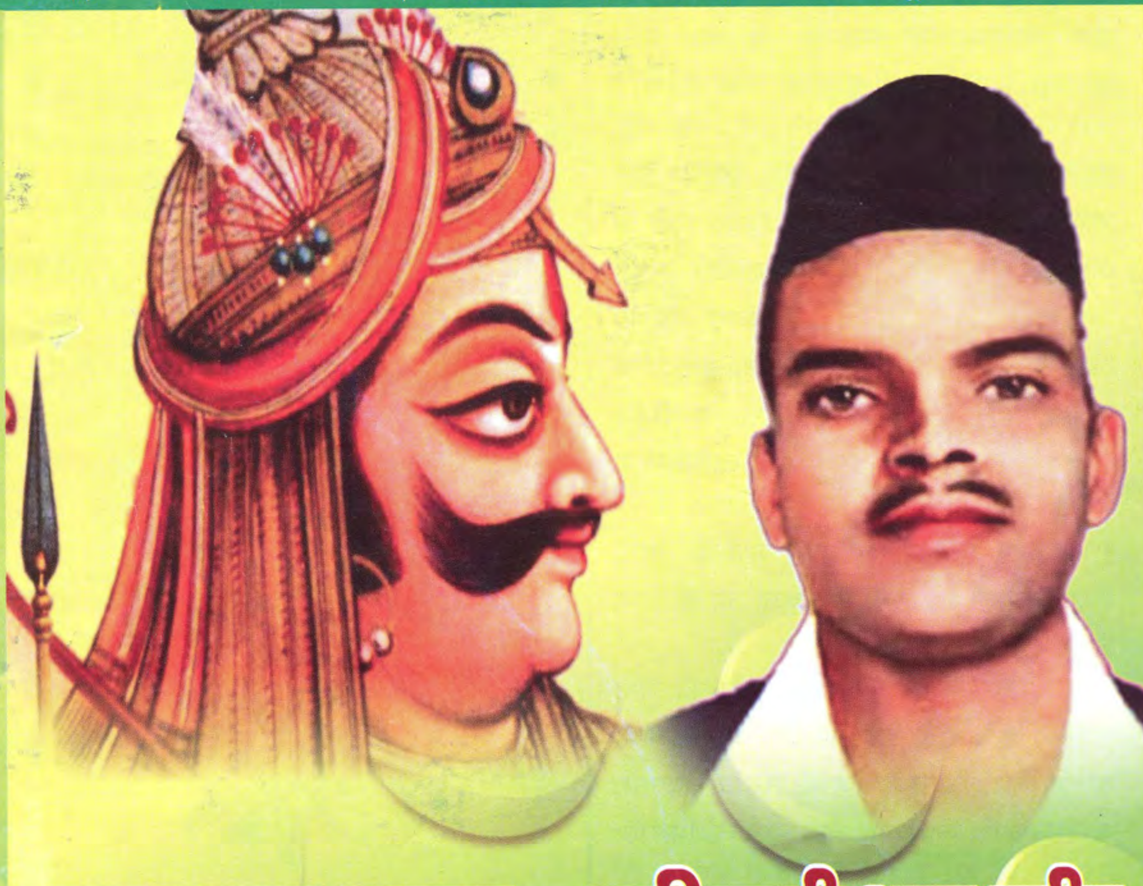

महाराणा प्रताप

क्रान्तिकारी अमर शहीद सुखदेव

संस्थापक : स्व० स्वामी ओ३मानन्द सरस्वती
प्रधान सम्पादक : आचार्य विजयपाल
सम्पादक : विरजानन्द दैवकरणि
व्यवस्थापक : ब्र० राहुल आर्य

सुधारक के नियम व सविनय निवेदन

1. सुधारक का वार्षिक शुल्क 150 रुपये है तथा आजीवन सदस्यता शुल्क 1500 रुपये है।
2. यदि सुधारक 20 तारीख तक नहीं पहुंचता है तो आप व्यवस्थापक सुधारक के नाम से पत्र डालें। पत्र मिलते ही सुधारक पुन: भेज दिया जाएगा।
3. वार्षिक शुल्क तथा आजीवन शुल्क मनीआर्डर द्वारा '**व्यवस्थापक सुधारक**' के नाम भेजें। सुधारक वी.पी. रजिस्ट्री द्वारा नहीं भेजा जाएगा।
4. लेख सम्पादक सुधारक के नाम भेजें, लेख छोटे, सरल, संक्षिप्त, सारगर्भित तथा मौलिक होने चाहिएं तथा स्पष्ट, शुद्ध एवं सुन्दर लेख में कागज के एक ओर लिखे जाने चाहिएं। अशुद्ध एवं गन्दे लेखवाला लेख नहीं छापा जाएगा। लेखों को प्रकाशित करना न करना तथा उनमें संशोधन सम्पादक के अधीन होगा। अस्वीकृत लेख डाक-व्यय प्राप्त होने पर ही वापिस भेजे जाएंगे।
5. सुधारक में विज्ञापन भी दिए जाते हैं, परन्तु विज्ञापन शुद्ध एवं वास्तविक वस्तु का ही दिया जाएगा।
6. यह सुधारक मासिक पत्र समाजसुधार की दृष्टि से निकाला जाता है। इसमें आपको धर्म, यज्ञकर्म, समाजसुधार, देश व समाज की स्थिति, ब्रह्मचर्य, योगासन आदि विषयों पर लेख पढ़ने को मिलेंगे।
7. सुधारक के दस ग्राहक बनानेवाले सज्जन को एक वर्ष तक नि:शुल्क सुधारक भेजा जाएगा तथा पचास ग्राहक बनानेवाले सज्जन को दो वर्ष नि:शुल्क सुधारक भेजा जाएगा तथा उसका फोटो सहित जीवन परिचय सुधारक में निकाला जाएगा।

–व्यवस्थापक

वर्ष :६३ अंक : ९
मई २०१६ विक्रमाब्द २०७२
दयानन्दाब्द १९१ कलिसंवत् ५११६
सृष्टिसंवत्-१,९६,०८,५३,११६

विषय-सूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
१.	आर्याभिविनय	१
२.	गुरुकुल और गोशाला के लिए.....	२
३.	महाराणा प्रताप	३
४.	गीता में त्रैतवाद	६
५.	वैशेषिक दर्शन में परमाणु...	११
६.	महाभारतकालीन अद्‌भूत शास्त्रों....	१३

सुधारक मासिक पत्र का वार्षिक शुल्क १५० रुपये भेजकर स्वयं ग्राहक बनें और दूसरे साथियों को भी ग्राहक बनाकर सुधार कार्य में सहयोग दीजिये।

–व्यवस्थापक सुधारक

आर्याभिविनयः

प्रार्थना-विषय

गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्द्धनः।
सुमित्रः सोम नो भव।। ३८।।

-ऋ ०१।६।२१।।[१]

व्याख्यान-हे परमात्मभक्त जीवो! अपना इष्ट जो परमेश्वर, सो (**गयस्फानः**) प्रजा धन जनपद और स्वराज्य बढ़ानेवाला है। तथा (**अमीवहा**) शारीर-इन्द्रियजन्य और मानसरोगों का हनन (=विनाश) करनेवाला है। (**वसुवित्**) सब पृथिव्यादि वसुओं का जाननेवाला है, अर्थात् सर्वज्ञ और विद्यादि धन का दाता है। (**पुष्टिवर्धनः**) अपने[२] शरीर इन्द्रिय, मन और आत्मा की पुष्टि का बढ़ानेवाला है। (**सुमित्रः सोम नो भव**) सुन्दर यथावत् सबका परममित्र वही है। सो अपने[३] उससे यह मांगें कि हे सोम सर्वजगदुत्पादक! आप ही कृपा करके हमारे सुमित्र हो, और हम भी सब जीवों के मित्र हों, तथा अत्यन्त मित्रता आपसे ही रक्खें।। ३८।।

प्रार्थना-विषय

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि।
अप नः शोशुचदघम्।। ३९।।

ऋ १।७।५।६।।[१]

व्याख्यान-हे अग्ने परमात्मन्! (**त्वं हि**) तुम ही (**विश्वतः परिभूरसि**) सब जगत् में सब ठिकानों में व्याप्त हो। अत एव आप [(**विश्वतोमुखः**)] विश्वतोमुख हो। हे सर्वतोमुख अग्ने! आप स्वशक्ति से सब जीवों के हृदय में सत्योपदेश नित्य ही कर रहे हो, वही आपका मुख है। हे कृपालो! (**अप नः शोशुचदघम्**) आपकी इच्छा से हमारा पाप सब नष्ट हो जाये, जिससे हम लोग निष्पाप होके आपकी भक्ति और आज्ञा-पालन में नित्य तत्पर रहें।। ३९।।

स्तुति-विषय

तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं
विश आरीराहुतमृञ्जसानम्।
ऊर्जःपुत्रं भरतं सृप्रदानुं
देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम्।। ४०।।

ऋ १।७।३।३।।[१]

व्याख्यान-हे मनुष्यो! (**तमीळत**) उस अग्नि की स्तुति करो। कैसा है वह अग्नि? (**प्रथमम्**) सब कार्यों से पहिले वर्त्तमान, और सबका आदि कारण है। तथा (**यज्ञसाधम्**) सब संसार और विज्ञानादि यज्ञ का साधक=सिद्ध करनेवाला, सबका जनक है। हे (**विशः**) मनुष्यो! उसी को स्वामी मानकर (**आरीः**) प्राप्त होओ, [(**आहुतम्, ऋञ्जसानम्**)] जिसको हम अपने पुकारते हैं, और जिसको विज्ञानादि से विद्वान् लोग सिद्ध करते हैं, और जानते हैं, [वही] (**ऊर्जःपुत्रं भरतम्**) पृथिव्यादि जगत्रूप अन्न का **पुत्र**, अर्थात् पालन करनेवाला, तथा **भरत** अर्थात् उसी अन्न का पोषण और धारण करनेवाला है। (**सृप्रदानुम्**) सब जगत् के चलने की शक्ति देनेवाला और ज्ञान का दाता है। उसी को (**देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्**) देव=विद्वान् लोग अग्नि कहते, और धारण करते हैं। वही सब जगत् को द्रविण अर्थात् निर्वाह के सब अन्न-जलादि पदार्थ और विद्यादि पदार्थों का देनेवाला है। उस अग्नि=परमात्मा को छोड़के अन्य किसी की भक्ति वा याचना कभी किसी को न करनी चाहिये।। ४०।।

सम्पादकीय

गुरुकुल और गोशाला के लिए अन्न तथा चारा दान

गुरुकुल झज्जर स्थानीय जनता के सहयोग से प्रगति करता आ रहा है। इस सहयोग में अन्न और धन की सहायता विशेष उल्लेखनीय है। यद्यपि इस बार ओले आदि के कारण अनेक ग्रामों में फसल की पर्याप्त हानि हुई है। परन्तु जहां प्रकृति का ऐसा प्रकोप नहीं था, वहां सरसों और गेहूं की उपज पर्याप्त हुई है। इस कारण जो ग्राम प्रतिवर्ष अन्न दान और चारे से गुरुकुल की गोशाला के लिए सहायता करते आ रहे हैं, उनसे नम्रतापर्वूक निवेदन है कि इस वर्ष भी अपने सामर्थ्यानुसार गुरुकुल तथा गोशाला की उन्नति हेतु अवश्य ही सहायता प्रदान करें। एक क्विंटल गोहूं का मूल्य अधिक से अधिक १५५० रुपये है। यदि प्रत्येक परिवार एक-एक बोरी अन्न की सहायता करने का प्रयत्न करे तो बहुत बड़ा उपकार होगा। इसी भांति गायों की सेवा हेतु एक-एक क्विंटल भूसा-चारा आदि का प्रबन्ध भी करना चाहिये। गुरुकुल की गोशालाओं में ३५० गायें हैं। इनमें से अधिकतर वे गायें हैं जो निकटवर्ती ग्रामों के व्यक्ति गाय के दूध से सूखने पर गुरुकुल में छोड़ जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में गाय को यहां रखने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं बचता। इसी प्रकार अनेक व्यक्ति बछड़ों को भी यहीं छोड़ जाते हैं, क्योंकि बछड़े बैल बनकर हल चलाने के कार्य में आते थे। ट्रैक्टर के कारण बैलों का उपयोग समाप्त हो गया है। कोई-कोई व्यक्ति बुग्गी में जोड़ने हेतु एक बैल रख लेता है। इस अवस्था में गुरुकुल की गोशाला में पशुओं की निरन्तर वृद्धि होती जा रही है, जबकि आय का स्त्रोत अति सीमित है, वह भी जब ग्रामों में जाकर भिक्षा मांगनी पड़ती है, तब कुछ प्राप्ति होती है।

वर्तमान भारत सरकार तथा हरियाणा सरकार भी गोशालाओं की उन्नति हेतु प्रयत्न कर रही है। यदि इस ओर विशेष ध्यान दिया जाये तो जो गोहत्यारे लोग रातों-रात गायों को प्रान्त से बाहर ले जाकर कटवाते हैं, उनको जनता के सम्मुख कठोर यातना देकर प्राणों से वियुक्त कर दिया जाये तो ऐसे लोग इस प्रकार के क्रूर और घृणाप्रद कार्य करने से भय मानने लग जायेंगे और गोरक्षा होने में सुविधा होगी।

गायें केवल दूध के लिए ही उपयोगी नहीं हैं, परन्तु इनके घी से आयुर्वेदिक दृष्टि से पञ्चगव्यघृत, फलघृत, त्रिफलाघृत आदि

अनेक औषधियां बनती हैं। गोमूत्र से उदर रोगों की औषधियां तैयार होती हैं। गोबर के द्वारा खाद का उपयोग तो सामान्य जनता भी करना जानती है। स्वाभाविक मृत्यु होने पर इन पशुओं का चमड़ा भी उपयोग में लाया जाता है। जो हत्यारे गोहत्या करके मांस का विक्रय करते हैं, वे जनता को अनेक पीढियों को होने वाले लाभ से वंचित करते हैं। ऐसे लोगों को वही दण्ड दिया जाना चाहिये तो व्यक्ति की हत्या करने वालों को दिया जाता है। इस विषय में जनता को भी जागरूक होना चाहिये कि वह इन हत्यारों को गायें न दें। धार्मिक संगठनों को चाहिये कि वे जनता में ऐसे वीडियो दिखायें जिनमें गोहत्या करने के दृश्य दिखाये हैं। कुछ मुसलमान भी अत्यन्त क्रूरतापूर्वक गोवध करते हुए अपना वीडियो प्रदर्शित करते हैं जिससे गोप्रेमी हिन्दुओं को परेशान करके आनन्द उठा सकें। ऐसे दृश्यों को देखकर भी जनता को चाहिये कि वे ऐसे क्रूर लोगों के हाथों में गाय आदि पशुओं को न दिया करें। गाय कृषि का मूल है। कृषि जनता के शरीर पोषण का मूल है। यदि मूल नष्ट हो गया तो सब कुछ नष्ट हो जाएगा। अत: मूल की रक्षा करना अनिवार्य है।

विरजानन्द दैवकरणि

महाराणा प्रताप

-संकलन कर्ता

-राहुल शास्त्री (व्यवस्थापक सुधारक)

महाराणा प्रताप सिंह (शुक्ल तृतीया रविवार विक्रम संवत् १५९७ तदनुसार ९ मई १५४९-२९ जनवरी १५९७) उदयपुर, मेवाड में शिशोदिया राजवंश के राजा थे। उनका नाम इतिहास में वीरता और दृढ प्रण के लिये अमर है। उन्होंने कई सालों तक मुगल सम्राट् अकबर के साथ संघर्ष किया। महाराणा प्रताप सिंह ने मुगलों को कई बार युद्ध में भी हराया। उनका जन्म राजस्थान के कुम्भलगढ में महाराणा उदयसिंह एवं माता राणी जीवत कँवर के घर हुआ था। १५७६ के हल्दीघाटी युद्ध में २०,००० राजपूतों को साथ लेकर राणा प्रताप ने मुगल सरदार राजा मानसिंह की ८०,००० सेना का सामना किया। शत्रु सेना से घिर चुके महाराणा प्रताप को झाला मानसिंह ने अपने प्राण देकर बचाया और महाराणा को युद्धभूमि छोड़ने के लिए बोला। शक्तिसिंह ने आपना घोड़ा देकर महारणा को बचाया। प्रिय अश्व चेतक की भी मृत्यु हई। यह युद्ध तो केवल एक दिन चला परन्तु इसमें १७,००० लोग मारे गए। मेवाड़ को जीतने के लिये अकबर ने सभी प्रयास किये। महाराणा की हालत दिन-प्रतिदिन चिंतित हुई। १५,००० राजपूतों को १२ साल तक चले उतना अनुदान देकर भामा शाह भी अमर हुआ।

महाराणा प्रताप की माता पाली के सोनगरा

अखैराज की बेटी थी। महाराणा प्रताप को बचपन में कीका के नाम से पुकारा जाता था। महाराणा प्रताप का राज्याभिषेक गोगुन्दा में हुआ।

महाराणा प्रताप ने अकबर की अधीनता को कभी स्वीकार नहीं किया था। अकबर ने महाराणा प्रताप को समझाने के लिये क्रमश: चार शान्ति दूतों को भेजा।

१. जलाल खान कोरची (सितम्बर १५७२)

२. मानसिंह (१५७३)

३. भगवान दास (सितम्बर–अक्टूबर १५७३)

४. टोडरमल (दिसम्बर १५७३)

हल्दीघाटी का युद्ध

यह युद्ध १८ जून १५७६ ईस्वी में मेवाड तथा मुगलों के मध्य हुआ था। इस युद्ध में मेवाड की सेना का नेतृत्व महाराणा प्रताप ने किया था। इस युद्ध में महाराणा प्रताप की तरफ से लडने वाले एकमात्र मुस्लिम सरदार थे हकीम खाँ सूरी।

इस युद्ध में मुगल सेना का नेतृत्व मानसिंह तथा आसफ खाँ ने किया। इस युद्ध का आँखों देखा बर्णन अब्दुल कादिर बदायूनीं न किया। इस युद्ध को आसफ खाँ ने अप्रत्यक्ष रूप से जेहाद की संज्ञा दी। इस युद्ध में बींदा के झालामान ने अपने प्राणों का बलिदान करके महाराणा प्रताप के जीवन की रक्षा की। वहीं ग्वालियर नरेश 'राजा रामशाह तोमर' भी अपने तीन पुत्रों 'कुँवर शालीवाहन', 'कुँवर भवानी सिंह', 'कुँवर प्रताप सिंह' और पौत्र बलभद्र सिंह एवं सैंकडों वीर तोमर राजपूत योद्धाओं समेत चिरनिद्रा में सो गया।

इतिहासकार मानते हैं कि इस युद्ध में कोई विजयी नहीं हुआ। पर देखा जाए तो इस युद्ध में महाराणा प्रताप सिंह विजयी हुए। अकबर की विशाल सेना के सामने मुट्ठीभर राजपूत कितनी देर तक टिक पाते। यह युद्ध पूरे एक दिन चला और राजपूतों ने मुग़लों के छक्के छुड़ा दिया थे और सबसे बड़ी बात यह है कि युद्ध आमने सामने लड़ा गया था! महाराणा की सेना ने मुगलों की सेना को पीछे हटने के लिए मजबूर कर दिया था और मुगल सेना भागने लग गयी थी।

सफलता और अवसान

ई.पू. १५७९ से १५८५ तक पूर्व उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार और गुजरात के मुग़ल अधिकृत प्रदेशो में विद्रोह होने लगे थे। महाराणा भी एक के बाद एक गढ़ जीतते जा रहे थे अत: परिणामस्वरूप अकबर उस विद्रोह को दबाने में उलझा रहा और मेवाड़ पर से मुगलों का दबाव कम हो गया। इस बात का लाभ उठाकर महाराणा ने ई.पू. १५८५ में मेवाड़ मुक्ति प्रयत्नों को और भी तेज कर लिया। महाराणा की सेना ने मुगल चौकियों पर आक्रमण शुरू कर दिए और तुरंत ही उदयपुर समेत ३६ महत्त्वपूर्ण स्थानों पर फिर से महाराणा का अधिकार स्थापित हो गया। महाराणा प्रताप ने जिस समय सिंहासन ग्रहण किया, उस समय जितने मेवाड़ की भूमि पर उनका अधिकार था, पूर्ण रूप से उतने ही भूमि भाग पर अब उनकी सत्ता फिर से स्थापित हो गई थी। बारह वर्ष के संघर्ष के बाद भी अकबर उसमें कोई

परिवर्तन न कर सका। और इस तरह महाराणा प्रताप समय की लंबी अवधि के संघर्ष के बाद मेवाड़ को मुक्त करने में सफल रहे और यह समय मेवाड़ के लिए एक स्वर्ण युग साबित हुआ। मेवाड़ पर लगा हुआ अकबर ग्रहण का अंत ई.पू. १५८५ में हुआ। उसके बाद महाराणा प्रताप उनके राज्य की सुख-सुविधा में जुट गए, परंतु दुर्भाग्य से उसके ग्यारह वर्ष के बाद ही १९ जनवरी १५९७ में अपनी नई राजधानी चावंड में उनकी मृत्यु हो गई।

महाराणा प्रताप सिंह के डर से अकबर अपनी राजधानी लाहौर लेकर चला गया और महाराणा के स्वर्ग सीधरने के बाद अगरा ले आया।

'एक सच्चे राजपूत, शूरवीर, देशभक्त, योद्धा, मातृभूमि के रखवाले के रूप में महाराणा प्रताप दुनिया में सदैव के लिए अमर हो गए।

महाराणा प्रताप सिंह के मृत्यु पर अकबर की प्रतिक्रिया

अकबर महाराणा प्रताप का सबसे बड़ा शत्रु था, पर उनकी यह लड़ाई कोई व्यक्तिगत द्वेष का परिणाम नहीं था, हालांकि अपने सिद्धांतों और मूल्यों की लड़ाई थी। एक वह था जो अपने क्रूर साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था, जब कि एक तरफ यह था जो अपनी भारत माँ की स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रहा था। महाराणा प्रताप की मृत्यु पर अकबर को बहुत ही दुःख हुआ क्योंकि हृदय से वो महाराणा प्रताप के गुणों का प्रशंसक था और अकबर जानता था कि महाराणा जैसा वीर कोई नहीं है इस धरती पर। यह समाचार सुन अकबर रहस्यमय तरीके से मौन हो गया और उसकी आँख में आंसू आ गए।

महाराणा प्रताप के स्वर्गावसान के वक्त अकबर लाहौर में था और वहीं उसे खबर मिली कि महाराणा प्रताप की मृत्यु हो गई है। अकबर की उस वक्त की मनोदशा पर अकबर के दरबारी दुरसा आढ़ा ने राजस्थानी छंद में जो विवरण लिखा उसका भाव कुछ इस तरह है:-

हे गुहिलोत राणा प्रतापसिंघ तेरी मृत्यु पर शाह यानि सम्राट् ने दांतों के बीच जीभ दबाई और निश्वास के साथ आंसू टपकाए। क्योंकि तूने कभी भी अपने घोड़ों पर मुगलिया दाग नहीं लगने दिया। तूने अपनी पगड़ी को किसी के आगे झुकाया नहीं, हालांकि तू अपना आडा यानि यश या राज्य तो गंवा गया लेकिन फिर भी तू अपने राज्य के धुरे को बांए कंधे से ही चलाता रहा। तेरी रानियां कभी नवरोजों में नहीं गईं और ना ही तू खुद बादशाही डेरों में गया। तू कभी शाही झरोखे के नीचे नहीं खडा रहा और तेरा रौब दुनिया पर गालिब रहा। इसलिए मैं कहता हूं कि तू सब तरह से जीत गया और बादशाह हार गया।

अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए अपना पूरा जीवन का बलिदान कर देने वाले ऐसे वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप और उनके स्वामिभक्त अश्व चेतक को शत-शत कोटि-कोटि प्रणाम।

गीता में त्रैतवाद

भारत के धार्मिक साहित्य में प्रभाव तथा लोकप्रियता की दृष्टि से भगवद्गीता का स्थान सर्वोपरि है। सनातन धर्म में प्रस्थानत्रयी को अर्थात् उपनिषद्, वेदान्त-दर्शन और भगवद्गीता इन तीनों ग्रन्थों को सैद्धान्तिक दृष्टि से प्रमाणभूत ग्रन्थ माना जाता है। उपनिषद् और वेदान्त दर्शन भाषा तथा भावों की क्लिष्टता के कारण जनसाधारण में प्रवेश न कर सके। उनका प्रचार विद्वानों तक ही सीमित रहा। इसके विपरीत सरल तथा मधुर भाषा में एक उत्कृष्ट / दार्शनिक काव्य होने के कारण गीता अधिक लोकप्रिय हुई।

उपनिषद् वेद का सार मात्र है, ऐसी मान्यता है। कुछ लोग गीता को 'गीतोपनिषद्' भी कहते हैं और-

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालदनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता गीतामृतं दुग्धं महत्।।

आदि श्लोकों के आधार पर गीता को उपनिषद् का सार ही मानते हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि गीता वेदानुकूल है। परन्तु क्या यह सर्वमान्य है कि प्रमुख वैदिक सिद्धान्तों को लेकर गीता की रचना हुई है ? गीता के कुछ श्लोकों पर अध्ययन करने यह पता चलता है कि यह वेद को मान्यता प्रदान करती है, उदाहरणस्वरूप गीता के तृतीय अध्याय में श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन को उपेदश दिया है कि-

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्

अर्थात् सर्व शुभ कर्म वेद से ही उत्पन्न और प्रकट हुए हैं और वेद अविनाशी परमेश्वर का दिया हुआ अमूल्य ज्ञान है। पुनः उन्होंने कहा-

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न सः सिद्धिमवाप्नोति, न सुखं न परां गतिम्।।
तस्माच्छास्त्रप्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

अतः उपर्युक्त श्लोकों से अनुमित होता है कि गीता और वेद का घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा वेद को परम प्रमाण मानकर ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समस्त उपेदश दिया है। यह बात श्री अमर स्वामी जी ने अपनी पुस्तक 'गीता और वेद' में कही है। प्रमुख आर्य विद्वान् डॉ० भवानीलाल भारतीय द्वारा

लिखित शुद्ध गीता के सम्पादकीय में श्री ईश्वरी प्रसाद जी ने लिख है-'गीता एक महान् ग्रन्थ है, गीता के अनेक स्थलों पर वैदिक सत्यों (सार्वभौम सत्य) को जिस सरस शैली और सरल भाषा मे उद्घाटित किया है, वह देखते ही बनता है। अमर स्वामी जी महाराज अपनी पुस्तक 'गीता और ऋषि दयानन्द' में कहते हैं 'गीता अवैदिक नहीं है। आर्यसमाज के प्राय: सभी विद्वान् गीता का सम्मान करते हैं, और गीता को मानते रहे हैं, और मानते रहेंगे। परन्तु कुछ आर्यसमाजी विद्वान् गीता के घोर विरोधी रहे हैं।' हमारे मत में गीता पूर्णत: अवैदिक नहीं है। परन्तु यह बात सच है कि उसमें समय-समय पर प्रक्षेप हुये हैं, जिससे हमें वह अवैदिक प्रतीत होती है। कालान्तर में प्रक्षेपकारों द्वारा अवतारवाद, पौराणिकता तथा अद्वैतवादी विचारधारा के साधक श्लोक इस प्रकार प्रक्षिप्त किये गये, जिस प्रकार महाभारत के अन्य भागों में उन्होंने भारी मिलावट की थी। पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय जी ने ठीक ही लिखा है ''गीता के सभी स्थलों को वेदानुकूल सिद्ध नहीं किया जा सकता। हाँ यह मानना पड़ेगा कि गीता वेदों का मान करती है। गीता के कई श्लोकों को तो वेद मन्त्रों का भावार्थ अनुवाद कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ: यजुर्वेद ४०/५=गीता १३/१५, यजुर्वेद ४०.६=गीता-६/२० आदि। अत: वेद की कसौटी पर गीता का जितना अंश खरा उतरता है वह हमें ग्राह्य है, जितना अंश वेद प्रतिकूल है, वह हमें अमान्य है।''

गीता में सांख्य, योग, वेदान्त, सभी के विचार पाये जाते हैं। वेदान्त में भी जो परवर्ती अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि के दार्शनिक मतभेद पाये जाते हैं, उनके पोषक श्लोक भी गीता में एकाधिक स्थान पर मिलते हैं। इस प्रकार गीता में तीन प्रमुख परस्पर विरोधी **अद्वैतवाद, द्वैतवाद, त्रैतवाद** सिद्धान्त पाये जाते हैं। इसलिये गीता में वर्तमान रूप को दार्शनिक दृष्टि से 'त्रिदोष सन्निपात' बताते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने ठीक ही लिखा है-'उसमें कहीं तो जीव ब्रह्म का एकत्व प्रतिपादित है, कहीं पृथक्त्व देखने में आता है, और कहीं प्रकृति पुरुष का पृथक्त्व माना है।'

परन्तु इस लेख में हमें उन सब सिद्धान्तों की पुष्टि नहीं करनी है। हमें तो केवल (स्वामी दयानन्द के प्रमुख वैदिक सिद्धान्त) **'त्रैतवाद सिद्धान्त'** की यहाँ पुष्टि करनी है।

वेदों में त्रित्ववाद है, अर्थात्-वेद् 'ईश्वर, जीव और प्रकृति की नित्यता का प्रतिपादन करता है'। यह सिद्धान्त वैदिक दर्शन का मूल आधार रहा है, ऐसा स्वामी दयानन्द जी मानते हैं। ऋग्वेद में इन तीनों पदार्थों का विभाग इस प्रकार किया गया है कि 'वृक्षरूप प्रकृति भोग्य है, जीव भोक्ता है,

परमेश्वर साक्षीमात्र है।' मन्त्र निम्नप्रकार है-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।

उपर्युक्त मन्त्र श्वेताश्वतरोपनिषद् (४/६) में भी आया है और इस उपनिषद् में इस मन्त्र के अर्थ को प्रकट करने के लिए मुण्डकोपनिषद् (३/१/१) के श्लोक को ही उद्धृत किया गया है, और उपनिषद् ने अपने शब्दों में मन्त्रों के आशयानुसार उस त्रित्ववाद के सिद्धान्त को इस प्रकार प्रकट किया है।

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां वह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।

अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।।

इस प्रकार वेद और उपनिषद् प्रतिपादित यह त्रैतवादी विचारधारा गीता में भी स्पष्ट रूप में उपलब्ध होती है। उदाहरणार्थ, गीता के त्रयोदश अध्याय में कहा गया है-'**पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्**'-पुरुष जीव, प्रकृति के गुणों का उपभोग करता है। इसका आशय यह है कि पुरुष, या जीव तथा प्रकृति ये दो अलग तत्त्व हैं। पुरुष और प्रकृति दोनों अनादि हैं तथा परमात्मा से भिन्न हैं, यह बात उसी त्रयोदश अध्याय में कही गई है-

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादौ उभावपि।

विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।।

जीव से भिन्न परमात्मा की सर्वोच्चय सत्ता का वर्णन इस अध्याय के निम्न श्लोकों में पाया जाता है।

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।

अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते।।

यहाँ परब्रह्म को ज्ञेय कहा गया है, जिसको जानने से जीव को अमृत एवं शाश्वत जीवन की प्राप्ति होती है। इसका कोई आदि नहीं है, और वह जो सत् एवं असत् से विलक्षण है।

उपनिषद् में ईश्वर के स्वरूप का वर्णन जिस शैली में किया गया है, उसी से मिलती जुलती शैली गीता के निम्न श्लोकों में पाई जाती है। यथा-

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।

सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।।

अर्थात् उसके हाथ और पैर सब जगह हैं, उसकी आँखें, सिर और मुख सब ओर हैं, उसके कान सब दिशाओं में हैं, वह सबको आवृत्त करके संसार में ठहरा हुआ है। गीता की यह बात वेद से ली गई हैं। ऋग्वेद में कहा है-

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।

सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः।।

अर्थात्-उस एक देव के, जो द्युलोक और पृथिवी लोक का जनक है, चारों तरफ चक्षु हैं, चारों तरफ मुख हैं, चारो तरफ बाहु और पाद हैं। इसका यह मतलब नहीं कि वह स्थूल है। वह सूक्ष्म है, इन्द्रियों का विषय नहीं है, परन्तु फिर भी इन्द्रियों से उसका आभास होता है। गीता के त्रयोदश अध्याय में इसी आशय से कहा है-

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।

असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च।।

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।

सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्।।

अर्थात्-उसका अपना कोई इन्द्रिय नहीं है, फिर भी सब इन्द्रियों का आभास उसमें विद्यमान है, वह अनासक्त है, फिर भी सबको (आसक्त की तरह) सम्भाले हुए है, वह प्रकृति के (सत्त्व, रज, तम) गुणों से रहित है, फिर भी गुणों का भोक्ता है, और वह प्राणियों के बाहर है और अन्दर भी, वह अचल है और चलायमान भी, वह इतना सूक्ष्म है कि उसे जाना नहीं जा सकता, अर्थात् वह अविज्ञेय है। पुनः इस त्रयोदश अध्याय के अगले दो श्लोक (१३/१६-१७) में उनको क्रमशः प्राणियों का भर्त्ता, उनका विनाशक, उत्पन्नकर्त्ता, ज्योतियों का ज्योति तथा अन्धकार से परे बताया गया है। इस तरह ब्रह्म की परम सत्ता की व्याख्या इसी अध्याय में भी हुई है-'**परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन् पुरुषः परः**'-अर्थात् जीव के अतिरिक्त 'परमात्मा' नाम का एक परमपुरुष है। इससे स्पष्ट है कि **गीता ने यहां पुरुष, प्रकृति, परमात्मा, इन तीनों तत्त्वों का प्रतिपादन करते हुए 'त्रैतवाद' का समर्थन किया है।**

वेद प्रतिपादित इस त्रैतवादी विचारधारा के दर्शन हमें गीता के पंचदश अध्याय के निम्न

श्लोकों में भी होते हैं, जहाँ स्पष्टतया जीव, ईश्वर और प्रकृति को अनादि स्वीकार करते हुये तीनों का पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया है। यथा-

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।।

अर्थात् इस लोक में दो पुरुष हैं-एक नश्वर (प्रकृति) और दूसरा अनश्वर (जीव)। सब मूर्त पदार्थ (जिनका मूल कारण प्रकृति है) 'क्षर' कहलाते हैं तथा अक्षर जीव कूटस्थ आत्मा कहलाता है। परन्तु इन दोनों से भिन्न उत्तम पुरुष एक अन्य है, जिसे परमात्मा कहते हैं, जो इन तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर इनका भरण-पोषण करता है। इस वर्णन की विशेषता यह है कि यहाँ तीनों अनादि सत्ताओं को एक ही 'पुरुष' संज्ञा से सम्बोधित किया गया है, फिर भी उसका पारस्परिक वैभिन्य बताकर 'त्रैतवादी' सिद्धान्त की पुष्टि की गई है।

गीता में उक्त इन दोनों प्रसङ्गों की सूक्ष्म आलोचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसकी मौलिक विचारधारा क्या रही होगी। त्रयोदश अध्याय में **'हृदि सर्वस्य विष्ठितम्',** पञ्चदश अध्याय में **'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः'** और अष्टादश अध्याय में भी **'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति'** आदि श्लोकों में सब प्राणियों के हृदय में स्थित ईश्वर का वर्णन पृथक् से हुआ है। अतः इन सब उद्धरणों से स्पष्ट है कि योग की तरह गीता भी प्रकृति, पुरुष तथा ईश्वर इन तीन तत्त्वों को मानती है। गीता सेश्वरवादी सांख्य है और गीता का यह सेश्वरवादी साख्य, प्रकृति, पुरुष तथा ईश्वर इन तीनों को मानता है। डॉ० भवानीलाल भारतीय, प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, महात्मा नारायण स्वामी, डॉ० श्रीनिवास शास्त्री, पं० युधिष्ठिर मीमांसक और पं० उदयवीर शास्त्री आदि सुविख्यात आर्य विद्वानों ने भी गीता के त्रैतवाद सिद्धान्तों को अपने-अपने ग्रन्थों में स्पष्टतः दर्शाया है। अतः निःसन्देह हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि गीता में त्रैतवादी सिद्धान्त की पुष्टि की गई है।

डॉ नरसिंह चरण पण्डा
साधुआश्रम, होश्यारपुर

वैशेषिक दर्शन में परमाणु का स्वरूप

भारतीय दर्शनों में अध्यात्म और अधिभूत का लक्ष्य कर वस्तु तत्त्व का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि प्रत्येक दर्शन में तत्त्व की दोनों विधाओं का उल्लेख हुआ है, परन्तु मुख्य रूप से किसी दर्शन का उपपाद्य विषय अध्यात्म और किसी का अधिभूत है। संसार की गाड़ी ज्ञान के क्षेत्र में इन दोनों पहियों के आधार पर ही चल पाती है। इसी कारण प्रत्येक भारतीय दर्शन में अध्यात्म अधिभूत दोनों का उपपादान हुआ है।

पदार्थ-

वैशेषिक उन पदार्थों का विवेचन करता है, जिनके मध्य जीवन पनपता फूलता-फलता है। उस समस्त अर्थतत्त्व को वैशेषिक छह वर्गों में विभाजित कर उन्हीं का मुख्यरूप से उपपादन करता है। इस विवेचन के मुख्य विषय अधिभूत तत्त्व हैं, जिनको मानव अपने चारों ओर फैला हुआ पाता है। इन सब भावनाओं के साथ यह समझते हुए कि सर्वसाधारण जिस वातावरण के बीच रहता है एवं उसके चारों ओर जो यह स्थूल जगत् बिछा पड़ा है, उसके विषय में मानव के लिए यथार्थ परिचय देना उसके जीवन की सुविधा के लिए आवश्यक है। सर्वप्रथम मानव को अपने चारों ओर बिखरे प्राकृतिक पदार्थों के विषय में जिज्ञासा उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इसलिए इन व्यक्त भौतिक पदार्थों एवं उनके विशिष्ट धर्मों की व्याख्या की भावना से वैशेषिक दर्शन में महर्षि कणाद ने परमाणुवाद के स्वरूप की सिद्धि की है।

परमाणुवाद का स्वरूप-

न्याय वैशेषिक सिद्धान्त के अनुसार परमाणु ही कार्यरूप सृष्टि के मूल कारण हैं। परमाणु शब्द का अर्थ है 'परम अणु', अर्थात् सबसे छोटा अणु, जिसका आगे विभाजन न किया जा सके, जो निरवयव हो। परमाणु का परिमाण 'परिमाण्डल्य' कहलाता है। क्योंकि सबसे छोटे परिमाण को वैशेषिकों ने पारिमाण्डल्य माना है- **पारिमाण्डल्यमिति सर्वापकृष्टं परिमाणम्** (न्याय कार्तिक) यह परिमाण नित्य होता है-**नित्यं परिमण्डलम्।** (वै०सू० ६।१।२०) इसका कारण है कि नित्य द्रव्यों के परिणाम नित्य होते हैं। (नित्ये नित्यम् वै०द० ७।१।१९) जैसे आकाश का महत् परिमाण भी नित्य है।

पारिमाण्डल्य परिमाण वाले परमाणुओं का प्रत्यक्ष नहीं होता, क्योंकि महत् परिमाण वाले द्रव्य में सावयवता तथा रूप निवेश होने से ही द्रव्य का बाह्य इन्द्रियों से प्रत्यक्ष होता है-**महत्यनेकद्रव्यत्वात् रूपाच्चोपलब्धिः** (वै०द० ४.१.६)। परमाणु महत् परिणाम से रहित है, इसलिए इसका प्रत्यक्ष नहीं होता।

चार प्रकार के परमाणु-पार्थिव, जलीय, तैजस्, वायवीय, ये चारों प्रकार के परमाणु विशेष गुणों से युक्त हैं। पार्थिव परमाणु के गुण गन्ध प्रधान और जलीय परमाणु के गुण रस हैं। तैजस परमाणुओं के गुण रूप हैं। एवं वायवीय परमाणुओं का गुण स्पर्श है।

परमाणुओं में पाये जाने वाले इन गुणों की सिद्धि कार्य दव्यों के गुणों से होती है। क्योंकि कार्यगुण कारण गुण पूर्वक होते हैं-''**कारणभावात् कार्यभावः**'' (वै०द० १.१.३)।

किसी कार्य द्रव्य का परिमाण बड़ा है और किसी का छोटा। छोटे कार्य द्रव्यों के अवयवरूप परमाणु अधिक होते हैं जैसे-सर्षप और मेरु पर्वत का आकारगतभेद परमाणुओं की कम अधिक संख्या के कारण ही है। कम अधिक संख्या निर्धारण परमाणुओं को कम अधिक अविभाज्य मानने पर ही हो सकता है-(न्याय वार्तिक तात्पर्य टाक, पृ० १०५८)

परमाणु अविभाज्य हैं-

यदि ऐसा स्वीकार न करके विभाजन

स्वीकार करें तथा विभाजन की प्रक्रिया निरन्तर मानें और कहीं कोई स्थिरता स्वीकार न करें, तो प्रत्येक वस्तु के अनन्त अवयव स्वीकार करने होंगे। इससे सर्षप के अवयव भी अनन्त होंगे और मेरु के भी। तब दोनों के ही अनन्त अवयव वाला होने के कारण दोनों के परिणाम में भेद स्थापित न हो सकेगा, जबकि आकार भेद प्रत्यक्ष सिद्ध है।

इसके अतिरिक्त परिमाण के तारतम्य के आधार पर भी परमाणु की सत्ता को सिद्ध किया जा सकता है, जैसे-महत् परिणाम का तारतम्यभाव आकाश आदि में पूर्णता को प्राप्त होता है, वैसे अणु परिमाण का तारतम्यभाव भी कहीं समाप्त होता है? अणु परिमाण का तारतम्यभाव जहाँ समाप्त हो जाता है, वह सीमा परम अणु अर्थात् सबसे छोटे अणु की होती है। उसके आगे परमाणु का विभाजन नहीं होता, जिससे परमाणु निरवयव है और निरवयव होने के कारण नित्य है, जैसे कि आकाश **''अणुपरिमाणतारतम्यंक्वचित्...अतएव नित्येद्रव्यत्वे सत्यनवयवत्वादाकाशवत्''**

हम यदि अनन्तकाल तक विभाजन न मानें तथा विभाजन करते हुए अन्त में शून्य में विभाजन का पर्यवसान मानें, तो भी न हो सकेगा, क्योंकि विभाजन साधार होता है। बिना किसी आधार के विभाजन सम्भव नहीं है।

तारतम्य भाव-

यहाँ एक तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि अणु परिमाण का यह तारतम्यभाव त्रसरेणु में स्थिर होने वाला क्यों न मान लिया जाय? इस तर्क के समाधान में न्याय वैशेषिक की युक्ति है कि त्रसरेणु द्रव्य होने के कारण महत् परिणाम स्वरूप है। इसलिए अनेक द्रव्यों से भी निर्मित है, जैसे घट-पट आदि।

इसलिए परमाणु ही परम अणु अर्थात् अणु परिमाण की सीमा है। इस प्रकार परमाणु अदृश्य, नित्य, अविभाज्य सीमित परिमाण वाले व स्पर्शाधार होते हैं।

परमाणुओं के संयोग से सृष्टि-

इस प्रकार वैशेषिक दर्शन में स्वीकृत परमाणु कारणवाद के अनुसार परमाणु ही सृष्टि के समवायी कारण हैं। परमाणुओं के परस्पर संयोग से सृष्टि की उत्पत्ति होती है। ये संयोग परमाणुओं में उत्पादक गति उत्पन्न होने पर होते हैं। परमाणुओं में यह गति अदृष्ट के द्वारा होती है। अदृष्ट की यह कार्यक्षमता ईश्वर की ओर से होती है। महेश्वर की सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा पर सभी आत्माओं के अदृष्ट की शक्ति कार्यों के उत्पादन के लिए अमिमुख हो जाती है।

सर्वप्रथम वायु के परमाणुओं में क्रिया उत्पन्न होती है और अवयवी द्रव्यों की सृष्टि होती है। इसके उपरान्त वायुमण्डल में ही जलीय परमाणुओं में क्रिया उत्पन्न होकर कार्य द्रव्यों का निर्माण होता है और तत्पश्चात् जलराशि के अन्दर ही तैजस् तथा पार्थिव परमाणुओं में क्रिया उत्पत्ति से महाभूत पृथ्वी और तेज की उत्पत्ति होती है।

अत: कारण रूप में परमाणुओं की सत्ता है, जो कि अकारणवत् है और अकारणवान् होने के कारण परमाणु नित्य है। वैशेषिक दर्शन में इसका स्पष्ट उल्लेख है **''सदकारणवन्नित्यम्''** (वै०सू० ४.१.१)

इसी निरवयव परमाणु के अस्तित्व को स्वीकार करने से दृश्य वस्तुओं का आकारभेद सिद्ध हो सकता है, जोकि चींटी से लेकर हाथी तक और सर्षप से लेकर मेरु तक की वस्तुओं में स्पष्ट दिखाई देता है। अत: परमाणुओं के अविभाज्य, नित्य व अकारणवत् अस्तित्व को मानने से कोई इन्कार नहीं कर सकता।

-आचार्य सत्येन्द्र प्रकाश 'सत्यम्'
३२५ ए / १२, हंस ऐंक्लेव, कणाद निवास
(गुड़गाँव)

महाभारतकालीन अद्भूत शास्त्रों की झाँकी

प्रलयकाल की अग्नि के समान महाभारत युद्ध की भयङ्कर अग्नि ज्वाला ने भारतीय वीरता को दीपशिखा के अन्तिम ज्वलन्त प्रकाश के समान संसार के समक्ष उपस्थित करके सदा के लिये विदा कर दिया। भारतीय वीरता का सूर्य पाश्चात्य सभ्यता के मेघों के, झकोरों से आँख से ओझल हो गया अब तो भारत के वीरत्व का भग्नावशेष भी संसार में ढूँढ़े नहीं मिलता। भग्नावशेष तो दूर की बात है यदि श्रद्धास्पद परम पावन वेदनिष्ठ महर्षि वेदव्यास जी महाराज ने महाभारत ग्रन्थ को न रचा होता तो सम्भवत: आज महाभारत का नाम लेवा भी संसार में न मिलता। वीरता के जो थोड़े से स्फुलिंग कहीं पर मिलते हैं वे भी कही न मिलते और युद्ध परायण क्षत्रिय लोग शय्या पर सड़-सड़ कर ही मरते। महाभारत का अध्ययन करने पर मनुष्य के अन्दर एक आन्तरिक स्फूर्ति सी उठती है, जिससे अपने अन्दर वीरता धारण करने की स्वभाविक इच्छा होती है, संसार में प्रलय पर्यन्त यह अमर ग्रन्थ प्राचीनता के पुजारी क्षत्रिय वीरों को मार्ग दिखाता रहेगा और संसार इसका ह्रदय से सदा आभारी रहेगा।

इस भयङ्कर नरमेध में १८ दिन के स्वल्प से समय के अन्दर दोनों पक्ष की १८ अक्षौहिणी सेना नष्ट हो गई-इसमें से सात अक्षौहिणी सेना पाण्डवों की और ११ अक्षौहिणी कौरव दुर्योधन की ओर थी, अक्षौहिणी सेना का परिमाण महाभारत के आदि पर्व में निम्न प्रकार से उल्लिखित मिलता है।

एको रथो गजश्चैको नरा पञ्च पदातय:।
त्रयश्चतुरगास्तज्ञै: पत्तिरित्यभिधीयते।।
पत्तिं तु त्रिगुणामेतामाहु: सेना-मुखं बुधा:।
त्रीणि सेना-मुखान्येको गुल्म इत्यभिधीयते।।
त्रयो गुल्मा गणो नाम वाहिनी तु गणास्त्रय:।
स्मृतास्तिस्रस्तु वाहिन्य: पृतनेति विचक्षणै:।।
चमूस्तु पृतनास्तिस्रस्तिस्रश्चमूवत्यनीकिनी।
अनीकिनीदशगुणां प्राहुरक्षौहिणीं बुधा:।।

-आदि प० २।१९ से २२

एक रथ, एक हाथी, पाँच पैदल तथा तीन घोड़े की एक पत्ति और तीन पत्तियों का सेना-मुख, तीन सेना-मुखों का एक गुल्म, तीन गुल्मों का गण, तीन गण की एक वाहिनी, तीन वाहिनी की एक पृतना, तीन पृतना का एक चमू, तीन चमू की अनीकिनी, १० अनीकिनी की एक अक्षोहिणी कहलाती है। संख्या तालिका निम्न प्रकार बनेगी।

अक्षौहिणी संख्या तालिका

रथ	हाथी	घोड़े	पैदल	सेना का नाम
१	१	३	५	पत्ति
३	३	९	१५	सेना-मुख
९	९	२७	४५	गुल्म
२७	२७	८१	१३५	गण
८१	८१	२४३	४०५	वाहिनी
२४३	२४३	७२९	१२१५	पृतना
७२९	७२९	२१८७	३६४५	चमू
२१८७	२१८७	६५६१	१०९३५	अनीकिनी
२१८७०	२१८७०	६५६१०	१०९३५०	अक्षौहिणी

२१८७०+२१८७०+६५६१०+१०९३५०=२१८७००

रथ हाथी घोड़े और पैदलों का परिमाण हुआ, परन्तु रथ और हाथियों पर कम से कम रथ हाथी का चलाने वाला और १ वीर योद्धा का भी होना आवश्यक है, अत: २१८७०×२=४३७४० मनुष्य रथ के सवार तथा ४३७४० हाथियों के और चूँकि घोड़े पर भी कम से कम एक योद्धा का होना अवश्यम्भावी है, अत: ६५६१० और मिलाने पर ३७१६९० वीरों की एक अक्षौहिणी सेना का परिमाण हुआ। २१८७०×२=४३७४० रथ के घोड़े पृथक् रह गये।

इस प्रकार १८ अक्षौहिणी सेना में ३७१६९०×१८=६९९०४२० लगभग ७० लाख रथ हाथी-घोड़े पैदल पलटन का स्वाहा हो गया वह भी केवल १८ दिन में। इस महायुद्ध को एक वर्ष हो गया पर अभी तो एक अक्षौहिणी की भी समाप्ति नहीं हुई। हो कैसे ? दस घण्टे बम वर्षा हो और आक्रान्त हों केवल तीन बूढ़े बच्चे, उसमें भी दो साधारण जख्मी, एक चिन्ताजनक पर मरे कोई भी नहीं।

पर महाभारत काल में पाण्डव-पक्ष की ७ अक्षौहिणी सेना को मारने के विषय में कौरव पक्ष की सेना के वीरशार्दूल सेनापतियों ने निम्न प्रकार अनुमान किया था।

भीष्म पितामह-२५७५५७० सेना को एक मास में नष्ट कर डालूँगा।

द्रोण-२५७५५७० सेना को एक मास में नष्ट कर डालूँगा।

कृपाचार्य-२५७५५७० सेना को एक मास में नष्ट कर डालूँगा।

अश्वत्थामा-२५७५५७० सेना को दश दिन में नष्ट कर डालूँगा।

कर्ण-२५७५५७० सेना को ५ दिन में नष्ट कर डालूँगा।

यह था भारतीय वीरों का साहस, वीरता और ओज। संसार में इसका उदाहरण ढूँढ़ा न

मिलेगा। परन्तु एक-एक अक्षौहिणी सेना के सहित इन वीरों पर जिन वीरपुङ्गवों ने विजय प्राप्त की उनके वीरत्व का क्या अनुमान किया जा सकता है।

महाभारत में इस वृत्तान्त का अध्ययन करते ही सहसा मस्तिष्क में एक विचार उठता है और मनुष्य गहरी दृष्टि से विचारने लगता है कि इन वीर योद्धाओं के पास ऐसी कौन-सी विचित्र शक्ति थी, जिसके कारण वे लोग ऐसे धुरन्धर लड़ाके वीर बने और पीछे संसार में वीरता का कीर्ति-स्तम्भ छोड़ गये। वास्तव में महाभारत का युग वीरता का युग था, वीरता मनुष्य देह धारण कर घर-घर घूमती थी। उस समय शस्त्रधारी वीर ही सांसारिक ऐश्वर्य को भोग सकता था। महाभारतकालीन विविध अद्भुत शस्त्र ही थे, जिनके भरोसे पर एक वीर में सहस्र हाथियों का बल जताया जाता था, यह शस्त्र ही थे, जिनके कारण लाखों सेना को वर्षों में नहीं, महीनों में नहीं, सप्ताहों में नहीं, अपितु दिनों में समाप्त किया जा सकता था।

त्वाष्ट्र अस्त्र

द्रोणपर्वान्तर्गत संशप्तकवधपर्व में वर्णन आता है कि जब नारायणी सेना ने क्रुद्ध होकर वीर शिरोमणि अर्जुन को नाना प्रकार के शस्त्रों का प्रयोग कर अर्जुन को घेर लिया और छिपा दिया तो रण-भूमि में अत्यन्त क्रुद्ध हो वीर अर्जुन पूरे बल से अपने गाण्डीव धनुष को छोड़ कर अपने पराक्रम को प्रकाशित करने लगे। अर्जुन के गाण्डीव में औरों की अपेक्षा यह विचित्रता थी कि जहाँ अन्य योद्धा अन्य शस्त्रों के सहाय से भयङ्कर शस्त्रों को चलाया करते थे। जैसे इषीक से ब्रह्मशिरा: अस्त्र को, वहाँ अर्जुन उन अस्त्रों को अपने गाण्डीव से ही चलाते थे। गाण्डीव धनुष से भी जब वे उस पर वज्रास्त्र चढ़ाते थे तो वज्र के समान वेग और क्षुर, प्राञ्जलीक, अर्द्धचन्द्र, नालीक, नाराच और बराहकर्ण आदि निकलने लगते थे कर्ण पर्व: ८१। २४ श्लोक अस्तु।

अथास्त्रमरिसङ्घघ्नं त्वाष्ट्रमभ्यसदर्जुनः।
ततो रूप-सहस्त्राणि प्रादुरासन् पृथक् पृथक्।। २।।

-द्रो०सं० १९। ११

जब वीरवर अर्जुन ने शत्रुओं के समूह के समूह नाश करने वाले प्रजापतिप्रदत्त त्वष्टा नाम के अस्त्र को चलाया तो उसके प्रभाव से महाराज अर्जुन के सहस्रों स्वरूप पृथक्-पृथक् युद्ध भूमि में उत्पन्न हो गये।

आत्मनः प्रतिरूपैस्तैर्नानारूपैर्विमोहिताः।
अन्योऽन्यमर्जुनं मत्वा स्वात्मनं च जघ्निरे।।
अयमर्जुनोऽयं गोविन्द इमौ पाण्डवयादवौ।
इति ब्रुवाणाः सम्मूढा जघ्नुरन्योन्यमाहवे।।

-द्रो०संश....१९।१२-१३

नारायणी सेना के सम्पूर्ण वीर लोग युद्ध-भूमि में अनेक अर्जुन देखकर अपनी सेना के शूरवीरों को ही अर्जुन समझ कर दबादब मारने लगे। यह अर्जुन है, यह कृष्ण है ऐसा कह कर आपस में ही एक-दूसरे पर आक्रमण करने लगें।

आज संसार इससे वंचित है, अतः इस पर विश्वास करना उसके लिये कठिन है, पर भारत में अब भी इसका भग्नावशेष उस फूलझड़ी के रूप में मिलता है, जिसके प्रकाश में सब नकटे ही दिखाई देते हैं। इस फूलझड़ी का प्रदर्शन दरबार के समय देहली में किया गया बताते हैं। सम्भव हो सकता है, इस शस्त्र से पहले अन्धकार फैल जाता हो और पीछे ऐसे स्फुलिङ्ग छोड़े जाते हों, जिसमें छोड़ने वाले का ही प्रतिबिम्ब पड़ता हो और शत्रु सैन्य उसी प्रतिबिम्ब पर आक्रमण करते हुए अपनों का ही संहार करती हो। धन्य है भारत की शस्त्रकला।

अञ्जलिका वेध-विद्या

इसी पर्व में आगे चलकर आता है, जिस हाथी पर सवार होकर देवताओं के राजा इन्द्र ने दैत्यों और दानवों को पराजित किया था, उसी कुल में उत्पन्न १० सहस्त्र हाथियों का बल रखने वाले हाथी, जिस पर कि भगदत्त गर्व करता था-को लड़ाई में भीमसेन पर छोड़ दिया गया, मस्त हाथी ने क्रोध में भरकर भीमसेन के रथ को घोड़ों सहित चूर-चूर कर दिया, भीमसेन को अपनी अञ्जलिका वेध-विद्या पर पूरा विश्वास था, वह उसके विश्वास पर दौड़े और हाथी के नीचे चिपट गये। हाथी ने बहुतेरा सूँड को खींचा खाँचा पर भीमसेन को ऊपर न निकाल सका और परिश्रान्त तथा विकल हो भूमि पर गिर पड़ा। भीमसेन ने अपनी अञ्जलिका वेध-विद्या के द्वारा खूनी हस्ती से अपने प्राणों की रक्षा की।

ब्रह्मास्त्र

ततः शतसहस्त्राणि शराणां नतपर्वणाम्, असृजन्नर्जुने राजन् संशप्तकमहारथाः।
नैव कुन्तीसुतः पार्थो नैव कृष्णो जनार्दनः, न हयो न रथो राजन् दृश्यन्ते स्म शरैश्चिताः।

-द्रो० सं० २७-१८-१९

जिस समय संशप्तक योद्धाओं ने वीरवर अर्जुन के ऊपर एक बार ही एक लाख नतपर्व बाणों की घोर वर्षा की तो भगवान् कृष्ण और अर्जुन रथ तथा रथ के घोड़े अस्त्रों से छिप गये, उस समय का दृश्य अन्धेरी रात्रि से कहीं बढ़कर था, क्योंकि वहाँ पर न अर्जुन दिखाई देते थे न कृष्ण न घोड़े न रथ, सब तीरों से आच्छादित थे।

तदा मोहमनुप्राप्तः सिष्विदे हि जनार्दनः।
ततस्तान् प्रायशः पार्थो ब्रह्मास्त्रेण निजघ्निवान्।।

–द्रो० सं० २७–२०

भगवान् कृष्ण पसीने से लथपथ हो गये तब वीर अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र को छोड़ दिया। तब

शतशः पाणयश्छिन्ना सेषुज्यातलकार्मुकाः।
केतवो वाजिनः सूत! रथिनश्चापतन्क्षितौ।।

–द्रो० २७–२१

जिसके प्रभाव से धनुष बाण रोदा और तनुत्राण के सहित सैंकड़ों वीर योद्धा घोड़े रथ ध्वजा और सारथी के सहित मरकर पृथ्वी पर गिरने लगे।

द्रुमाचलाग्राम्बुधरैः समकायाः सुकल्पिताः।
हतारोहाः क्षितौ पेतुर्द्विपाः पार्थशराहताः।।

–२७–२२

वृक्षों, पहाड़ों और बादलों के समान स्थूलकाय हाथी अपने असवारों सहित अर्जुन के अस्त्र से मर–मरकर पृथ्वी पर गिरने लगे।

सर्ष्टिप्रासासिनखरः समुद्गर-परश्वधाः।
विच्छिन्न-बाहवः पेतुर्नृणां भल्लैः किरीटिना।।

–द्रो० सं० २७–२४

संशप्तक वीर योद्धा जिनको अपनी सेना पर गर्व था एक ब्रह्मास्त्र के प्रभाव से ऋष्टि, प्रास, तलवार, परिघ, मूसल, मुद्गर और परश्वध आदि शस्त्रों के सहित भुजायें कट–कट पृथ्वी पर गिरने लगीं।

जब भगवान् कृष्ण ने ये देखा तो बहुत प्रसन्न हुए, क्योंकि इस युद्ध में नीति निपुण दुर्योधन तथा कर्ण ने चालाकी से इधर संशप्तक वीरों से अर्जुन पर तीर छुड़वाये और दूसरी ओर धर्मराज युधिष्ठिर पर भी भगदत्त से आक्रमण कराया था कि जिससे अर्जुन द्विविधा में पड़ जाये, परन्तु अर्जुन सब समझता था। इसी ब्रह्मास्त्र का वर्णन वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में भी आया है।

''त्रैलोक्यमासीत् संत्रस्तं ब्रह्मास्त्रे समुदीरिते''

अर्थात् ब्रह्मास्त्र के छोड़ने पर तीनों लोक भयभीत हो गये। और–

''रोदसी संपफालेव पर्वताश्च चकम्पिरे।
तमश्चलोकमाववे दिशश्च न चकाशिरे।''

वीर अर्जुन की इस साहस तथा शस्त्रनिपुणता को देखकर भगवान् ने कहा–

कर्मैतत् पार्थ शक्रेण यमेन धनदेन च।
दुष्करं समरे यत्ते कृतमद्येति मे मतिः।।

–दो० सं० २७। २१

हे अर्जुन! आज तूने समर भूमि में वह दुष्कर कार्य करके दिखलाया है जो कि इन्द्र, यमराज तथा कुबेर से भी दुस्साध्य था।

ब्रह्म-शिरः अस्त्र

जिस समय सारी कौरव सेना तथा द्रोणादि सब सेनापति मारे गये और केवल अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा कृतवर्मा ही शेष रह गये तो अश्वत्थामा को बड़ा क्रोध आया। क्रोध से आँखें लाल हो गयी ''मरता क्या नहीं करता'' अपने शिर को हथेली पर रखकर अपने पिता द्रोण को मारने वाले के वध करने की ठान ली। ''आतुरस्य कुतो निद्रा'' के अनुकूल द्रौणि को निद्रा भी नहीं आती थी। रात्रि में उल्लू को कौवों के बच्चों को मारता हुआ देख उसका अनुकरण करने का निश्चय किया। रात्रि को ही पाण्डव सेना में पहुँच गया। धृष्टद्युम्न के कण्ठ पर एक लात तथा एक छाती पर रखकर पशुमार मारने लगा।

यह समय वीरता का समय था।

अधर्मः क्षत्रियस्यैष यद्व्याधिमरणं गृहे।
यदाजौ निधनं याति सोऽस्य धर्मः सनातनः।।

वासिष्ठि धनुर्वेद संहिता के अनुसार क्षत्रिय लोग रण में कट-कटकर मरना श्रेयस्कर तथा धर्म समझते थे।

आत्मा को अमर वीर-शार्दूल धृष्टद्युम्न ने भी आजकल के लोगों की तरह ''काली गाय समझकर छोड़ दे'' कहकर बचना नहीं चाहा बल्कि निद्रा से जागरूक होकर अपने को असहाय समझकर कहा-

आचार्यपुत्र शस्त्रेण जहि मां मा चिरं कृथाः।
त्वत्कृते सुकृतांल्लोकान् गच्छेयं द्विपदां वर।।

–सौ० ८। २०

हे गुरु पुत्र! दया कर शस्त्र से मारो, जिससे कि मैं स्वर्ग को जा सकूँ। वास्तव में लड़ाई में लड़कर मर जाना ही क्षत्रिय का परम धर्म है। द्रोणि ने इतना सुन क्रोध में भरकर एक प्राणापहारिणी लात मारी और कहा-

''आचार्यघातिनां लोका न सन्ति कुलपाँसन''

–सौ० ८। २२

आचार्य का वध करने वाले पापी के लिये स्वर्गलोक नहीं है। क्रोध में भरा आगे बढ़ा और सारी सेना तथा द्रोपदी के पाँचों पुत्रों को रुद्रास्त्र से मार वापस आया।

जब यह समाचार सारथी के द्वारा युधिष्ठिर को ज्ञात हुआ तो व्याकुल हुए। नकुल के द्वारा द्रोपदी को बुलवाया। दु:खद समाचार को सुनते ही द्रोपदी का पारा चढ़ गया, बोली, जब तक उस अश्वत्थामा की मणि छीनकर नहीं लाओगे तब तक भोजन नहीं करूँगी। इतना सुन क्रोध में लाल पीले हो भीमसेन नकुल को लेकर अश्वत्थामा को मारने चले। पीछे से कृष्ण, अर्जुन और युधिष्ठिर भी चले। जाकर देखा कि द्रौणि व्यास के आश्रम में भस्म लगाये बैठा है।

अर्जुन ने अश्वत्थामा को ललकारा और अश्वत्थामा गर्व कर खड़ा हुआ और अपनी रक्षा के लिये ब्रह्मशिरास्त्र को चलाने के लिये इषीक अस्त्र को चलाया।

ततस्तस्यामिषीकायाँ पावकः समजायत। प्रधक्ष्यन्निव लोकाँस्त्रीन् कालांतकयमोपमः।।

–सौ० १४।२२

उस ब्रह्मशिर अस्त्र के पलीते में अग्नि उत्पन्न हुई और बढ़ी उस समय ऐसा मालूम होता था कि प्रलयकाल की यमाग्नि के समान तीनों लोकों को भस्म कर देगी। जब अर्जुन ने यह देखा तो उसके शान्त करने के लिये अपने गाण्डीव से ही ब्रह्मशिर अस्त्र को चला दिया।

ततस्तदस्त्रं सहसा सृष्टं गाण्डीवधन्विना।
प्रजज्वाल महार्चिष्मद्युगान्तानिलसन्निभम्।।

–सौ० १४।७

तदनन्तर वीर अर्जुन ने गाण्डीव धनुष से ब्रह्मशिर अस्त्र को उसके अस्त्र की निवृत्ति के लिये छोड़ा तो युगान्त की अग्नि के समान महान् अर्चिष्मान् हो जलने लगा।

तथैव द्रोणपुत्रस्य तदस्त्रं तिग्मतेजसः।
प्रजज्वाल महाज्वालं तेजोमण्डलसंवृतम्।।

–सौ० १४।८

उसी प्रकार द्रौणि का महातेजस्वी अस्त्र भी जलने लगा और चारों ओर प्रकाश करने लगा। ऐसी दशा देखा तो महर्षि व्यास दोनों के बीच में आ खड़े हुवे और बोले कि–

अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम यत्र परमास्त्रेण बाध्यते।
समा द्वादश पर्जन्यस्तद्राष्ट्रं नाभिवर्षति।।

–सौ० १५।२३

ब्रह्मशिरः नाम का अस्त्र जहाँ इसी ब्रह्मशिर अस्त्र से शान्त किया जाता है वहाँ पर १२ वर्ष तक वर्षा नहीं होती। अकाल पड़ जायेगा, प्रजा पीड़ित होगी, अतः हे वत्स! इसका संहार करो। इस पर अर्जुन ने तो अस्त्र को बन्द कर दिया, परन्तु अश्वत्थामा उसको वापिस न कर सके, क्योंकि–

ब्रह्मतेजोद्भवं तद्धि विसृष्टमकृतात्मना।

न शक्यमावर्त्तियतुं ब्रह्मचारिव्रतादृते।।
अचीर्णब्रह्मचर्यो यः सृष्ट्वा वर्त्तयते पुनः।
तदस्त्रं सानुबन्धस्य मूर्द्धानं तस्य कृन्तति।।

–सौ० ऐ० १५।७ से ८

यह ब्रह्मशिर शस्त्र ब्रह्म-वेद के ज्ञान के अवगाहन से बना है, अतः इसे ब्रह्मचारी के अतिरिक्त कोई नहीं लौटा सकता, जो बिना किसी कार्य की इच्छा से उसे व्यर्थ ही छोड़ दे जैसे कि अभ्यासार्थ आजकल बन्दूक आदि को छोड़ते हैं तो वह ब्रह्मशिर अस्त्र लौट कर उसी का शिरश्च्छेदन कर देता है।

अब प्रश्न होगा कि कोई उसे लौटा नहीं सकता था तो अर्जुन ने कैसे लौटा लिया? इसके लिये लिखा है कि–

सत्यव्रतधरः शूरो ब्रह्मचारी च पाण्डवः।
गुरुवर्ती च तेनास्त्रं सञ्जहारार्जुनः पुनः।।

–१५–१०

अर्जुन सत्यव्रतधर और ब्रह्मचारी शूरवीर था। साथ ही गुरुवर्त्ती (गुरु सेवक) भी, अतः उसने ब्रह्मशिर महा अस्त्र को छोड़ दिया और लौटा भी लिया। अन्य किसी का सामर्थ्य नहीं।

ब्रह्मशिर अस्त्र के लिए अन्यत्र कई स्थानों पर आया है कि प्रलयकाल की अग्नि के समान इसमें लपटें निकलती थीं तभी तो आकाश तथा पृथिवी का जल सूख जाता था, वैद्युत् शक्ति नष्ट हो जाती थी, जिससे बारह वर्ष तक का काल पड़ता था।

सहस्त्रार वज्रनाभ

एक बार अश्वत्थामा द्वारिका गये भगवान् कृष्ण भी वहीं थे, उनके पास जाकर बोले कि भगवन्! मैं ब्रह्मशिर अस्त्र को ज़ानता हूँ मेरे पिता ने मुझे बताया है, आप मुझसे उसे सीख लें, पल्टे में–

स सुनाभं सहस्त्रारं वज्रनाभमयस्मयम्
वव्रे चक्रं महाभागो मत्तस्स्पर्धन् मया सह।।

द्रौणि अश्वत्थामा ने बीच में वज्र से बने हुये सहस्त्र आर वाले लोहे के चक्र को माँगा। भगवान् मुस्कराये और सहर्ष आज्ञा दे दी। द्रौणि आगे बढ़े,

न चैवं शकत् स्थानात् सञ्चालयितुमप्युत।
अथैनं दक्षिणेनापि ग्रहीतुमुपचक्रमे।।
सर्वयत्नबलेनापि गृह्णन्नेवमिदं ततः।
ततः सर्वबलेनापि यदेनं न शशाक ह।।

उद्यन्तुं वा चालयितुं द्रौणिः परमदुर्मनाः।
कृत्वा यत्नं परिश्रान्तः सन्न्यवर्त्तत भारत।।

अश्वत्थामा ने पर्याप्त शक्ति लगाई, परन्तु उसे स्थान से हिला भी नहीं सका तब दक्षिण हाथ से उसको पकड़ा। सर्व प्रकार के यत्न किये, सर्व प्रकार बल लगाया पर उसको हिला भी न सका। इस सहस्त्रार के विषय में स्वयं भगवान् ने कहा कि-

ब्रह्मचर्यं महद्घोरं तीर्त्वा द्वादशवार्षिकम्।।
हिमवत्पार्श्वमास्थाय यो मया तपसार्जितः।।

-सौ० १२।३०

मैंने द्वादश वर्ष तक महान् घोर ब्रह्मचर्य का पालन कर हिमालय की तराई में रहकर बड़ी तपश्चर्या से इसको गुरुओं तथा अपने ज्ञान से प्राप्त किया है।

पाशुपतास्त्र

जिस समय अर्जुन ने अभिमन्युघाती जयद्रथ का वध करने की प्रतिज्ञा की, उस समय उसके मन में विचार आया कि जयद्रथ तो सारी सेना के बीच में छिप जायेगा, उसका मारना बड़ा कठिन होगा, पहिले सारी सेना मरे तब वह मर सकेगा। क्या करूँ, कैसे करूँ, तब भगवान् कृष्ण ने कहा-

पार्थ पाशुपतं नाम परमास्त्रं सनातनम्।
येन सर्वान् मृधे दैत्यान् जघ्ने देवो महेश्वरः।।

-द्रो० ८०।१९

हे अर्जुन! घबराते क्यों हो, उस समय उस सनातन पाशुपतास्त्र को छोड़ना जिसके द्वारा महादेव ने दैत्यों का वध किया था।

इस अस्त्र से या तो सारी सेनायें समाप्त हो जायेंगी या रास्ता छोड़ देंगी।

अमोघ शक्ति

जटासुर को मारने वाला घटोत्कच कर्ण के साथ युद्ध कर रहा था तब उसने आकाश में उड़ कर वार करने प्रारम्भ किये, तब उस जोश में आकर अलम्बुष राक्षस ने दुर्योधन से कहा भगवान् मुझे लड़ने के लिये भेजिये मैं इसको अवश्य मारूँगा, क्योंकि इसने मेरे पिता को मारा था, उस समय दुर्योधन ने कहा-

पाण्डवानां हितं नित्यं हस्त्यश्वरथघातिनम्।
वैहायसं गतं युद्धे प्रेषयेः यमसादनम्।।

-द्रो० १७४-११

हे अलम्बुष! तुम जाओ और पाण्डवों के हित में लगे हुए हस्ती अश्व रथ-घाती आकाश में

गये हुए घटोत्कच को मारकर यमलोक को पहुँचा दो।

इससे ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल मे योद्धा आकाश के मार्ग से विमान में बैठकर लड़ते थे और रामचरित छठे अंक में आग्नेयास्त्र का वर्णन हैं, जिसे छोड़ने से गन्धर्व के आकाशगत विमान के झण्डों में आग लग गई। जान पड़ता है, उसका विमान (आग न लग सकने वाली) धातु का बनाया, इसलिये केवल झण्डों में आग लग सकी, शेष सुरक्षित रहा। वह विमान दो सीट का था उसमें उसकी भार्या भी बैठी थी।

अस्तु! सूतपुत्र कर्ण के पास एक अमोघ शक्ति ही ऐसी थी जिस पर उसको गर्व था, इसको उसने अर्जुन को मारने के लिए रिजर्व रखा था। पर विवश होकर इस शक्ति को उसने घटोत्कच पर छोड़ दिया, जिससे वीर पुङ्गव घटोत्कच विमान में भी अपने आपको न बचा सका।

अञ्जलीक

अथ त्वरं कर्णवधाय पार्थ
महेन्द्रवज्रा नलदंडसन्निभम्।
आदत्त चाथाञ्जलिकं निषङ्गात्
सहस्त्ररश्मेरिव रश्मिमुत्तमम्।।

–कर्णपर्व ९-११-४०

अर्जुन ने शीघ्र ही कर्ण का वध करने के लिये इन्द्र के वज्र के समान, अर्थात् विद्युन्मय दण्ड रूप अंजलीक को तूणीर से निकाला और कर्ण पर छोड़ दिया, इसका परिणाम तीन अरित्र था और इसको अथर्वाङ्गिरा मुनि ने बनाया था। जब अर्जुन ने कान तक खींच कर इसको छोड़ा तो सूर्य के समान दश दिशाओं में प्रकाश हो गया।

''ततोऽर्जुनस्तस्य शिरोजहार।
वृत्रस्य वज्रेण यथा महेन्द्रः।।''

जिस प्रकार इन्द्र ने वृत्रासुर को अपने वज्र से मारा था, उसी प्रकार अर्जुन ने अपने अञ्जलीक बाण से कर्ण का शिर काट दिया और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा।

वारुण अस्त्र

अर्जुन के आग्नेयास्त्र चलाने से जब समस्त जगतीतल पर अग्नि भड़कने लगी तब कर्ण ने इसकी शान्ति के लिये वारुणास्त्र को छोड़ा।

तद्वीक्ष्य कर्णो ज्वलनास्त्रमुद्यतम्,

स वारुणं तत्प्रशमार्थमाहवे।
समुत्सृजत् सूतसुतः प्रतापवान्,
स तेन वह्निं शमयाम्बभूव।

–कर्णपर्व ८९-११

आग्नेयास्त्र की अग्नि को शान्त करने के निमित्त कर्ण ने वारुणास्त्र को चलाया, उससे अग्नि शान्त हो गई। राम रावण और चन्द्रकेतु और लव के युद्ध में भी आग्नेयास्त्र की निवृत्ति के लिये इसका प्रयोग किया गया है।

वायव्य और शैलास्त्र

आग्नेयास्त्र की निवृत्ति के लिये लक्ष्मण ने वायव्यास्त्र को रावण के लड़के पर छोड़ा था।

जिस समय आचार्य द्रोण तथा उनकी सहायतार्थ दुर्योधन के भेजे हुए सुशर्मा ने अर्जुन पर बाण चलाकर अर्जुन को छिपा दिया तब

मुमोचास्त्रं महाराज वायव्यं पृतनामुखे।
प्रादुरासीत्ततो वायुः क्षोभमाणो नभस्तलम्।।

–भी० १२०-१९

त्रिगर्तराज सुशर्मा तथा द्रोण के ऊपर अर्जुन ने वायव्यास्त्र का प्रयोग किया, उसके प्रभाव से आकाश को क्षोभण करती हुई वायु बड़े वेग से चलने लगी, उसको देखकर।

शैलमन्यं महाराज घोरमस्त्रं मुमोच ह।
द्रोणेन युधि निर्मुक्ते तस्मिन्नस्त्रे नराधिप।।

–भीष्म० १०२-२१

आचार्य द्रोण ने शैलास्त्र को चलाया, उसके **प्रभाव से 'प्रशशाम ततो वायुः'** वायु शान्त हो गई।

नारायणास्त्र

प्रादुरासन् ततो बाणा दीप्ता सहस्रशः

द्रोणपर्व में अश्वत्थामा ने इसका प्रयोग किया था, जिसके प्रभाव से सहस्रों दीप्त वाण शौले वाले गोले रूप पैदा हो गये थे।

शतघ्नी

प्रादुरासन् महाराज कार्ष्णायसमया गुडाः

शतघ्नी के छोड़ने पर बड़े-बड़े लोहे के गोले पैदा हो गये, इस प्रकार महाभारत में अनेकों शस्त्रों का वर्णन है, वास्तव में महाभारत शस्त्रों की खान है, लेख के विस्तार-भय से सबका प्रयोग नहीं दिया जा सकता, महाभारत ने तत्कालीन वीरता का ज्वलन्त उदाहरण जनता के समक्ष रक्खा है।

महाभारत का विश्वानि देव ही शस्त्रास्त्रों की दीवारों पर हुआ है। इसका अध्ययन छोड़ कर भारतवासी निरुत्साही और आलसी बने पड़े हैं। यदि भारत सन्तति इस ग्रन्थ का अध्ययन करे तो कदापि सम्भव नहीं हो सकता है कि वह इतनी दुर्बल दीख पड़े। जिस जाति के पास वेद, उपवेद, रामायण, महाभारत जैसे ग्रन्थ विद्यमान हों और आज वह नपुंसक बनी हो! इसका एक ही कारण है, उसने इनका अध्ययन ही छोड़ दिया और सहस्त्रों वर्षों तक भटकते फिरते रहे। प्रभु की परम अनुकम्पा से वैदिक मूर्द्धन्य वेदनिष्ठ भगवान् दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ, उन्होंने अपनी तपश्चर्या तथा सद्वक्तृता से संसार को विरुद्ध मार्ग से रोक कर श्रेय मार्ग का अवलम्बन कराया है। उसी श्रेय मार्ग का अवलम्बन करना हमारा कर्त्तव्य है।

-पं० विश्वप्रिय शर्मा

शोक समाचार

श्रीमद्दयानन्दार्ष विद्यापीठ, कार्यालय गुरुकुल झज्जर के परीक्षाधिकारी श्री ज्ञानवीरसिंह के पूज्य ताऊ श्री साधुसिंह जी (सुपुत्र श्री लालाराम) का देहावसान ९५ वर्ष की आयु में उनके ग्राम मई बादामपुर (एटा, उ० प्र०) में २७ अप्रैल २०१६ को हो गया। उनकी अन्त्येष्टि पूर्ण वैदिक रीति से की गई। श्री साधुसिंह जी सारी आयु भर ब्रह्मचारी रहे। निकटवर्ती क्षेत्र में इनके सदाचार की प्रशंसा आबाल वृद्ध वनिता सभी किया करते हैं। यद्यपि जन्म-मरण व्यक्ति के वश में नहीं होता, पुनरपि पारिवारिकजनों को इस दुखद समय में धैर्य मिले तथा दिवंगत आत्मा को सद्गति प्राप्त हो यही कामना हम ईश्वर से कर सकते है।

-सम्पादक

शोक समाचार

गुरुकुल झज्जर के प्रति निष्ठावान श्री बलवीर सिंह आर्य ग्राम फरमाणा (महम) का निधन १-४-२०१६ को हो गया। इन्होंने अपने पुत्र पौत्र को गुरुकुल झज्जर में शिक्षा दिलाई है। ये सत्यार्थ प्रकाश का प्रचार विशेष रूप से करते थे। ईश्वर से प्रार्थना है कि शोकसन्तप्त परिवार को धैर्य तथा दिवंगत आत्मा को कर्मानुसार सद्गति प्राप्त हो।

-सम्पादक

हमारी विशिष्ट औषधियाँ

संजीवनी तैल

यह तैल घाव के भरने में जादू का काम करता है। भयंकर फोड़े-फुन्सी, गले-सड़े पुराने जख्मों तथा आग से जले हुए घावों की अचूक दवा है। कोई दर्द या जलन किये बिना थोड़े समय में सभी प्रकार के घावों को भरकर ठीक कर देता है। खून का बहना तो लगाते ही बन्द हो जाता है। चोट की भयंकर पीड़ा को तुरन्त शान्त कर देता है। दिनों का काम घण्टों में और घण्टों का काम मिनटों में पूरा कर देता है।

मूल्य : ५०-०० रुपये

च्यवनप्राश

शास्त्रोक्त विधि से तैयार किया हुआ स्वादिष्ट सुमधुर और दिव्य रसायन (टॉनिक) है। इसका सेवन प्रत्येक ऋतु में स्त्री, पुरुष, बालक व बूढ़े सबके लिए अत्यन्त लाभदायक है। पुरानी खांसी, जुकाम, नजला, गले का बैठना, दमा, तपेदिक तथा सभी हृदयरोगों की उत्तम औषध है। स्वप्नदोष, प्रमेह, धातुक्षीणता तथा सब प्रकार की निर्बलता और बुढ़ापे को इसका निरन्तर सेवन समूल नष्ट करता है। निर्बल को बलवान् और बूढ़े को जवान बनाने की अद्वितीय औषध है। च्यवन ऋषि इसी रसायन के सेवन से जवान होगये थे।

मूल्य : १ किलो २५० रुपये

नेत्रज्योति सुर्मा

सुर्मे तो बाजार में पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं परन्तु इतना लाभप्रद और सस्ता सुर्मा मिलना कठिन है। इसके लगाने से आंखों के सब रोग जैसे आंखों से पानी बहना, खुजली, लाली, जाला, फोला, नजर की कमजोरी आदि विकार दूर होते हैं तथा बुढ़ापे तक आंखों की रक्षा करता है। दुखती आंखों में भी इसका प्रयोग अत्यन्त लाभप्रद है।

मूल्य : ३०-०० रुपये

बलदामृत

हृदय और उदर के रोगों में रामबाण है, इसके निरन्तर प्रयोग से फेफड़ों की निर्बलता दूर होकर पुनः बल आजाता है। पीनस (सदा रहनेवाला जुकाम और नजले) की औषधि है। वीर्यवर्धक, कासनाशक, राजयक्ष्मा, श्वास (दमा) के लिए लाभकारी है। रोग के कारण आई निर्बलता को दूर करता है तथा अत्यन्त रक्तवर्धक है।

मूल्य : १४०-०० रूपये

आर्य आयुर्वेदिक रसायनशाला, गुरुकुल झज्जर

हमारे प्रमुख प्रकाशन

१.	व्याकरणमहाभाष्यम् (५ जिल्द) (प्रदीप उद्योत, विमर्शसहित)	१०५०-००
२.	अष्टाध्यायी (पाणिनि)	१५-००
३.	कारिकाप्रकाश (सुदर्शनदेव)	२०-००
४.	लिङ्गानुशासनवृत्ति (सुदर्शनदेव)	१५-००
५.	फिट्सूत्रप्रदीप (सुदर्शनदेव)	१०-००
६.	छन्दःशास्त्रम् (व्रतिमंगलावृत्ति)	४५-००
७.	काव्यालकारसूत्राणि (व्रतिमंगलावृत्ति)	२५-००
८.	निरुक्त (हिन्दीभाष्य) (चन्द्रमणि)	२५०-००
९.	योगार्यभाष्य (आर्यमुनि)	२०-००
१०.	सांख्यार्यभाष्य (आर्यमुनि)	४०-००
११.	मीमांसार्यभाष्य (३ भाग)	२६०-००
१२.	वैशेषिकार्यभाष्य (आर्यमुनि)	६०-००
१३.	न्यायार्यभाष्य (आर्यमुनि)	१००-००
१४.	वेदान्तार्यभाष्य (आर्यमुनि)	१२०-००
१५.	महारानी सीता (स्वामी ओमानन्द)	१००-००
१६.	अष्टाध्यायीप्रवचनम् (६ भाग)	६५०-००
१७.	छान्दोग्योपनिषद्भाष्यम् (शिवशंकर)	२५०-००
१८.	वृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यम् (शिवशंकर)	१५०-००
१९.	उपनिषत्समुच्चय (पं० भीमसेन)	१००-००
२०.	ओरिजनल फिलासफी ऑफ योगा	२५०-००
२१.	मनोविज्ञान तथा शिवसंकल्प	३०-००
२२.	दयानन्दप्रकाश (स्वा० सत्यानन्द)	५०-००
२३.	धर्मनिर्णय (१-४ भाग)	८०-००
२४.	वैदिकविनय (१-३ भाग)	६०-००
२५.	देशभक्तों के बलिदान	१२५-००
२६.	सत्यार्थप्रकाश (दयानन्द)	२००-००
२७.	स्वतन्त्रता संग्राम में आर्यसमाज का योगदान	४०-००
२८.	यजुर्वेद संहिता (मन्त्रानुक्रमणि)	१००-००
२९.	सामवेद संहिता (मन्त्रानुक्रमणि)	८०-००
३०.	अथर्ववेद संहिता (मन्त्रानुक्रमणि)	३५०-००
३१.	ऋग्वेद संहिता (मन्त्रानुक्रमणि)	३५०-००
३२.	सामवेद पदसंहिता	२५-००
३३.	ओमानन्द अभिनन्दन ग्रन्थ	१००-००
३४.	सुखी जीवन (सत्यव्रत)	३०-००
३५.	महापुरुषों के संग में (सत्यव्रत)	१५-००
३६.	घर का वैद्य (१-५ भाग)	१००-००
३७.	दैनंदिनी (सत्यव्रत)	२५-००
३८.	ब्रह्मचर्य के साधन (१-११ भाग)	६०-००
३९.	संस्कृतप्रबोध (आचार्य बलदेव)	२०-००
४०.	संस्कारविधि (स्वामी दयानन्द)	५०-००
४१.	स्वामी ओमानन्द ग्रन्थमाला (४ जिल्दों में)	१२००-००
४२.	दयानन्द लहरी (मेधाव्रत आचार्य)	१५-००
४३.	विरजानन्दचरितम् (मेधाव्रत आचार्य)	१५-००
४४.	रामायणार्यभाष्य (दो भाग)	३२०-००
४५.	महाभारतार्यभाष्य (दो भाग)	४५०-००
४६.	स्वामी ओमानन्द जीवन (वेदव्रत शास्त्री)	४००.००

आर.एन.आई. द्वारा रजि. नं. 11757
पंजीकरण संख्या-P/RTK/85-3/2014-16

सुधारक लौटाने का पता :-
गुरुकुल झज्जर, जिला झज्जर (हरयाणा)-124103
E-mail : gurukuljhajjar@gmail.com

ग्राहक संख्या

श्री ______

स्थान ______

डा० ______

जिला ______

प्रकाशक आचार्य विजयपाल गुरुकुल झज्जर ने आचार्य प्रिंटिंग प्रेस, दयानन्दमठ, गोहाना मार्ग, रोहतक में मुद्रक-वेदव्रत शास्त्री के प्रबन्ध से छपवाया।